

Chapter पिचासी

कृष्ण द्वारा वसुदेव को उपदेश दिया जाना तथा देवकी-पुत्रों की वापसी

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण ने अपने पिता को दिव्य ज्ञान दिया और बलराम के साथ मिल कर अपनी माता के मृत पुत्रों का उद्धार किया।

वहाँ आये हुए मुनियों द्वारा कृष्ण की प्रशंसा सुन कर वसुदेव ने उन्हें तथा बलराम को अपना पुत्र मानना छोड़ कर भगवान् के रूप में उनकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता तथा सर्वज्ञता की प्रशंसा करना आरम्भ कर दिया। अपने पुत्रों की महिमा का गुणगान करने के बाद वसुदेव भगवान् कृष्ण के

चरणकमलों पर गिर पड़े और उनसे प्रार्थना की कि वे उनके मन से यह धारणा दूर कर दें कि भगवान् उनके पुत्र हैं। ऐसा न करके भगवान् कृष्ण ने वसुदेव को भगवत्-विद्या का उपदेश देकर उस धारणा को पुनः ला दिया और इन उपदेशों को सुन कर वसुदेव शान्त तथा संशयमुक्त हो गये।

तब माता देवकी ने कृष्ण तथा बलराम की प्रशंसा, उन्हें यह स्मरण दिलाते हुए की कि उन दोनों ने किस तरह अपने गुरु के मृत पुत्र को पुनः जीवित कर दिया था। उन्होंने कहा, “कृपा करके आप मेरी इच्छा वैसे ही पूरी करें। कृपा करके मेरे उन पुत्रों को वापस ला दें, जिन्हें कंस ने मार डाला था, जिससे मैं उन्हें एक बार फिर देख सकूँ।” इस तरह अपनी माता द्वारा याचना किये जाने पर दोनों भाई भूगर्भीय सुतल लोक गये, जहाँ वे बलि महाराज के पास पहुँचे। बलि महाराज ने उन्हें सम्मानपूर्वक आसन देकर उनकी पूजा की तथा स्तुतियों द्वारा उनका सत्कार किया। तब कृष्ण तथा बलराम ने बलि से देवकी के मृत पुत्रों को लौटाने के लिए अनुरोध किया। दोनों ने बलि से उन बालकों को प्राप्त करके देवकी को लौटा दिया। स्नेह उमड़ने से उनके स्तनों से दूध बहने लगा। देवकी ने अत्यधिक प्रसन्न होकर अपने बच्चों को अपना दूध पिलाया। भगवान् कृष्ण द्वारा जूठा किया हुआ दूध पीकर, वे देवता स्वरूप अपने आदि रूपों को प्राप्त करके स्वर्ग वापस चले गये।

श्रीबादरायणिरुवाच

अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या सङ्कर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री बादरायणि (शुकदेव गोस्वामी) ने कहा; अथ—तब; एकदा—एक दिन; आत्मजौ—दोनों पुत्र; प्राप्तौ—उनके पास आये; कृत—करके; पाद—चरणों का; अभिवन्दनौ—आदर; वसुदेवः—वसुदेव ने; अभिनन्द—उनका सत्कार करके; आह—कहा; प्रीत्या—स्नेहपूर्वक; सङ्कर्षण-अच्युतौ—बलराम तथा कृष्ण से।

श्री बादरायणि ने कहा : एक दिन वसुदेव के दोनों पुत्र संकर्षण तथा अच्युत उनके (वसुदेव के) पास आये और उनके चरणों पर नतमस्तक होकर प्रणाम किया। वसुदेव ने बड़े ही स्नेह से उनका सत्कार किया और उनसे इस प्रकार बोले।

मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ।
तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥

शब्दार्थ

मुनीनाम्—मुनियों के; सः—उसने; वचः—शब्द; श्रुत्वा—सुन कर; पुत्रयोः—अपने दोनों पुत्रों की; धाम—शक्ति; सूचकम्—बताने वाले; तत्—उनके; वीर्यैः—वीरतापूर्ण कार्यों से; जात—उत्पन्न; विस्त्रम्भः—संकल्प; परिभाष्य—नाम लेकर; अभ्यभाषत—उन्से कहा।

अपने दोनों पुत्रों की शक्ति के विषय में महर्षियों के कथन सुन कर तथा उनके वीरतापूर्ण कार्यों को देख कर वसुदेव को उनकी दिव्यता पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया। अतः उनका नाम लेकर, वे उनसे इस प्रकार बोले।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्सङ्कर्षण सनातन ।

जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा-योगिन्—हे महान् योगी; सङ्कर्षण—हे बलराम; सनातन—नित्य; जाने—मैं जानता हूँ; वाम्—तुम दोनों को; अस्य—इस (ब्रह्माण्ड) के; यत्—जो; साक्षात्—प्रत्यक्ष; प्रधान—प्रकृति का सृजनात्मक तत्त्व; पुरुषौ—तथा स्रष्टा भगवान्; परौ—परम।

[वसुदेव ने कहा] : हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे योगीश्रेष्ठ, हे नित्य संकर्षण, मैं जानता हूँ कि तुम दोनों निजी तौर पर ब्रह्माण्ड की सृष्टि के कारणस्वरूप और साथ ही साथ सृष्टि के अवयव भी हो।

तात्पर्य : जैसाकि भगवान् कपिलदेव के सांख्य मत में शिक्षा दी गई है परम पुरुष की सृजनात्मक शक्ति प्रधान है। इस तरह इन दोनों तत्त्वों में प्रधान अधिशासित शक्ति, स्त्री है, जो स्वतंत्र कार्य करने में अक्षम है, जबकि पुरुष परम स्वतंत्र है और वह आदि-स्रष्टा तथा भोक्ता है। न तो कृष्ण, न ही उनके भाई बलराम किसी अधीन शक्ति की कोटि में आते हैं प्रत्युत वे दोनों मिलकर आदि पुरुष हैं, जिनके साथ उनकी आनन्द, ज्ञान तथा सृजन की बहुत-सी शक्तियाँ आकर मिल जाती हैं।

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ।

स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जिसमें; येन—जिसके द्वारा; यतः—जिससे; यस्य—जिसका; यस्मै—जिसको; यत् यत्—जो जो; यथा—फिर भी; यदा—जब भी; स्यात्—हो; इदम्—इस (सृष्टि) को; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—अपनी उपस्थिति में; प्रधान-पुरुष—प्रकृति तथा उसके स्रष्टा (महाविष्णु) के; ईश्वरः—अधिष्ठता।

आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जो प्रकृति तथा प्रकृति के स्रष्टा (महाविष्णु) दोनों के स्वामी के रूप में प्रकट होते हैं। फिर भी प्रत्येक वस्तु जिस का अस्तित्व बनता है और जब कभी ऐसा होता है, वह आपके भीतर, आपके द्वारा, आपसे, आपके लिए तथा आपसे ही सम्बन्धित

होती है।

तात्पर्य : सामान्य दर्शक को यह ज्ञात जगत कई भिन्न भिन्न कारकों से उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। इस विचार का अच्छा सूचन स्वयं भाषा है, जिसके द्वारा परंपरागत संस्कृत के वैयाकरणों की व्याख्या के अनुसार, प्रकृति की दृश्य विविधता प्रतिबिम्बित होती है। पाणिनि मुनि द्वारा सिखाई गई प्रामाणिक संस्कृत व्याकरण के अनुसार क्रिया को ही वाक्य का सार माना जाता है और शेष शब्द तो उससे सम्बन्ध बताने वाले होते हैं। उदाहरणार्थ, किसी वाक्य में संज्ञा को किसी भी कारक में क्रिया से उसका सम्बन्ध बताने के लिए रखा जाता है। क्रिया से संज्ञा का सम्बन्ध *कारक* कहलाता है—उदाहरणार्थ, कर्ता कारक, कर्म कारक, करण कारक, सम्प्रदान कारक, अपदान कारक तथा अधिकरण कारक। इन कारकों के अतिरिक्त कभी कभी संज्ञाएँ अन्य सम्बन्धसूचक संज्ञाओं को बतला सकती हैं। इसी तरह क्रियाविशेषण भी—स्थान, काल, विधि इत्यादि के सूचक हैं। इस तरह भाषा यद्यपि अनेक कर्ताओं की प्रकट सृष्टि में क्रियाशीलता का द्योतन करती है, किन्तु अधिकतर सच्चाई यह है कि सारे व्याकरणिक रूप मूलतः भगवान् के सूचक हैं। इस श्लोक में वसुदेव ने विभिन्न व्याकरणिक रूपों द्वारा अपने दोनों बड़े चढ़े पुत्रों की प्रशंसा की है।

एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ।

आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो बिभर्ष्यज ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—इस; नाना-विधम्—विविध; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; आत्म—अपने द्वारा; सृष्टम्—उत्पन्न किये गये; अधोक्षज—हे दिव्य प्रभु; आत्मना—अपने में (परमात्मा रूप में); अनुप्रविश्य—भीतर प्रवेश करके; आत्मन्—हे परमात्मा; प्राणः—प्राण, तत्त्व; जीवः—तथा चेतना तत्त्व; बिभर्षि—पालन करते हो; अज—हे अजन्मा।

हे दिव्य प्रभु, आपने इस विचित्र ब्रह्माण्ड की रचना अपने में से की और तब अपने परमात्मा स्वरूप में आप इसके भीतर प्रविष्ट हुए। इस तरह हे अजन्मा परमात्मा, आप प्रत्येक व्यक्ति के प्राण तथा चेतना के रूप में सृष्टि का पालन करने वाले हैं।

तात्पर्य : भौतिक ब्रह्माण्ड का सृजन करते समय भगवान् अपना विस्तार परमात्मा के रूप में करते हैं और सृष्टि को अपने विराट शरीर के रूप में अपनाते हैं। कोई भी भौतिक शरीर किसी न किसी जीवात्मा के भोगने की इच्छा के बिना विद्यमान नहीं रह सकता और कोई भी *जीव* अपने मार्गदर्शन के लिए परमात्मा का साथ किये बिना शरीर को स्वतः नहीं बनाये रख सकता। वैष्णव आचार्यों ने

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध की टीका करते हुए व्याख्या की है कि गर्भोदकशायी विष्णु की कमल-नाभि से उत्पन्न होने के पूर्व भी ब्रह्मा सर्वप्रथम इस सम्पूर्ण भौतिक शक्ति अर्थात् महत् तत्त्व को अपने शरीर रूप में अपनाते हैं। इस तरह ब्रह्मा ब्रह्माण्ड से युक्त जीव हैं और विष्णु परमात्मा हैं, जो उनके साथ रहते हैं। ब्रह्मा को सृष्टि के विशिष्ट स्वरूप को संघटित करना होता है, किन्तु वे तब तक ऐसा नहीं कर पाते जब तक भगवान् विष्णु क्रिया की सूक्ष्म शक्ति—सूत्र-तत्त्व या प्राण-वायु—के रूप में तथा चेतना की सृजनात्मक शक्ति, अर्थात् बुद्धि-तत्त्व के रूप में अपना पुनः विस्तार नहीं कर लेते।

प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ।

पारतन्त्र्याद्वैसादृष्याद्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

प्राण—प्राण; आदीनाम्—इत्यादि का; विश्व—ब्रह्माण्ड का; सृजाम्—सृजनकारी तत्त्व; शक्तयः—शक्तियाँ; याः—जो; परस्य—परमात्मा की; ताः—वे; पारतन्त्र्यात्—परतंत्रता के कारण; वैसादृष्यात्—असमानता के कारण; द्वयोः—दोनों (चराचर) की; चेष्टा—क्रियाशीलता; एव—केवल; चेष्टताम्—सक्रिय जीवों की (प्राण इत्यादि की)।

प्राण तथा ब्रह्माण्ड-सृजन के अन्य तत्त्व, जो भी शक्तियाँ प्रदर्शित करते हैं, वे वास्तव में भगवान् की निजी शक्तियाँ हैं, क्योंकि प्राण तथा पदार्थ दोनों ही उनके अधीन तथा उनके आश्रित हैं और एक-दूसरे से भिन्न भी हैं। इस तरह इस भौतिक जगत की प्रत्येक सक्रिय वस्तु भगवान् द्वारा ही गतिशील बनाई जाती है।

तात्पर्य : प्राण सामान्य वायु से, जिसका हम स्पर्श कर सकते हैं, अधिक सूक्ष्म है। चूँकि प्राण इतना सूक्ष्म है—सृष्टि की किसी भी सूक्ष्म वस्तु से महीन, इसलिए इसे कभी कभी प्रत्येक वस्तु का चरम स्रोत माना जाता है। किन्तु प्राण जैसी सूक्ष्म शक्तियाँ भी अपनी कार्य-क्षमता के लिए परम सूक्ष्म परमात्मा पर निर्भर करती हैं। इस श्लोक में वसुदेव पारतन्त्रा शब्द से यही भाव व्यक्त कर रहे हैं। जिस तरह तीर का वेग तीर छोड़ने वाले तीरन्दाज की शक्ति से प्राप्त होता है, उसी तरह सारी परतंत्र शक्तियाँ परमेश्वर की शक्ति पर निर्भर रहती हैं। यही नहीं, विभिन्न सूक्ष्म कारण कर्म करने की शक्ति प्रदान किये जाने पर भी परमात्मा के समन्वयात्मक निर्देश के बिना तालमेल में कार्य नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध में ब्रह्मा ने अपनी सृष्टि का विवरण दिया है—

यदैतेऽसंगता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः ।

यदायतननिर्माणे न शोकुर्ब्रह्मवित्तम ॥

तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ।

सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्हृदः ॥

“हे योगीश्रेष्ठ नारद! शरीर का स्वरूप तब तक प्रकट नहीं होता जब तक सृजित अंश—यथा तत्त्व, इन्द्रियाँ, मन तथा प्रकृति के गुण—एकत्र नहीं हो जाते। अतः जब भगवान् की शक्ति के वेग से ये सभी एकत्र हो गये तभी यह ब्रह्माण्ड सृष्टि के मूल तथा गौण कारणों को स्वीकार करके प्रकट हुआ।” (भागवत २.५.३२-३३)

कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कक्षीविद्युताम् ।

यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

कान्तिः—आकर्षक चमक; तेजः—चटक; प्रभा—प्रकाश; सत्ता—तथा विशिष्ट अस्तित्व; चन्द्र—चन्द्रमा; अग्नि—आग; अर्क—सूर्य; ऋक्ष—तारे; विद्युताम्—तथा बिजली के; यत्—जो; स्थैर्यम्—स्थायित्व; भू-भृताम्—पर्वतों के; भूमेः—पृथ्वी के; वृत्तिः—धारणशक्ति का गुण; गन्धः—सुगन्धि; अर्थतः—सचमुच; भवान्—आप।

चन्द्रमा की कान्ति, अग्नि का तेज, सूर्य की चमक, तारों का टिमटिमाना, बिजली की दमक, पर्वतों का स्थायित्व तथा पृथ्वी की सुगंध एवं धारणशक्ति—ये सब वास्तव में आप ही हैं।

तात्पर्य : श्री वसुदेव द्वारा कृष्ण को यह बतलाना कि वे ही सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, बिजली तथा अग्नि के सार हैं, वास्तव में श्रुति तथा स्मृति दोनों ही के मत की पुष्टि मात्र है। उदाहरणार्थ, श्वेताश्वतर उपनिषद् (६.१४) में कहा गया है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।

तमेव भान्तमनु भाति सर्वं

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

“(आध्यात्मिक आकाश में) वहाँ न तो सूर्य चमकता है न चन्द्रमा, न तारे, न ही बिजली, तो फिर सामान्य अग्नि के बारे में क्या कहा जाय? यह तो आध्यात्मिक आकाश के तेज का प्रतिबिम्ब है कि अन्य सारी वस्तुएँ प्रकाश देती हैं और इस तरह उसकी चमक से सारा ब्रह्माण्ड प्रकाशित होता है।” और श्रीमद्भगवद्गीता (१५.१२) में भगवान् कहते हैं—

यद् आदित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विधि मामकम् ॥

“सूर्य का तेज, जो कि सारे जगत के अंधकार को दूर करता है, मुझसे उत्पन्न है। तथा चन्द्रमा और अग्नि का तेज भी मुझी से उत्पन्न है।”

तर्पणं प्राणनमपां देव त्वं ताश्च तद्रसः ।

ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तर्पणम्—संतोष उत्पन्न करने की क्षमता; प्राणनम्—जीवनदान; अपाम्—जल का; देव—हे प्रभु; त्वम्—तुम; ताः—वही (जल); च—तथा; तत्—उस (जल) का; रसः—आस्वाद; ओजः—शारीरिक उष्णता तथा प्राण-वायु के कारण जीवन-शक्ति; सहः—मानसिक शक्ति; बलम्—शारीरिक शक्ति; चेष्टा—प्रयास; गतिः—तथा चाल-फेर; वायोः—वायु का; तव—तुम्हारा; ईश्वर—हे परम नियन्ता ।

हे प्रभु, आप जल हैं और इसका आस्वाद तथा प्यास बुझाने एवं जीवन धारण करने की क्षमता भी हैं। आप अपनी शक्तियों का प्रदर्शन वायु के द्वारा शरीर की उष्णता, जीवन-शक्ति, मानसिक शक्ति, शारीरिक शक्ति, प्रयास तथा गति के रूप में करते हैं।

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ।

नादो वर्णस्त्वम्ॐकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

दिशाम्—दिशाओं के; त्वम्—तुम; अवकाशः—सहनशक्ति; असि—हो; दिशः—दिशाएँ; खम्—आकाश; स्फोटः—ध्वनि; आश्रयः—अपने आधार के रूप (आकाश); नादः—अप्रकट गूँज के रूप में ध्वनि; वर्णः—आदि अक्षर; त्वम्—तुम; ॐ-कारः—ओम्; आकृतीनाम्—विशेष रूपों के; पृथक्-कृतिः—अन्तर का कारण (अर्थात् प्रकट भाषा) ।

आप ही दिशाएँ एवं उनकी अनुकूलन-क्षमता, सर्वव्यापक आकाश तथा इसके भीतर वास करने वाली ध्वनि (स्फोट) हैं। आप आदि अप्रकट ध्वनि रूप हैं, आप ही प्रथम अक्षर ॐ हैं और आप ही श्रव्य वाणी हैं, जिसके द्वारा शब्दों के रूप में ध्वनि विशिष्ट प्रसंग बन जाती है।

तात्पर्य : सामान्य सृजन प्रक्रिया के अनुसार वाणी कई अवस्थाओं में से गुजर कर श्रव्य बनती है, जिसमें सूक्ष्म आन्तरिक दोलन से लेकर बाह्य अभिव्यक्ति तक सम्मिलित हैं। ऋग्वेद के मंत्र (१.१६४.४५) में इन अवस्थाओं का उल्लेख हुआ है—

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि

तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।

गुहायां त्रीणि निहितानि नेङ्गयन्ति

तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥

“विद्वान् ब्राह्मण भाषा की चार क्रमिक अवस्थाओं को जानते हैं। इनमें से तीन तो हृदय के भीतर अश्रव्य स्पन्दनों के रूप में छिपी रहती हैं जबकि चौथी अवस्था वह है, जिसे लोग सामान्यतया वाणी के रूप में समझते हैं।”

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ।

अवबोधो भवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥

शब्दार्थ

इन्द्रियम्—वस्तुओं को प्रकाशित करने की शक्ति; तु—तथा; इन्द्रियाणाम्—इन्द्रियों के; त्वम्—तुम; देवाः—देवता (जो विविध इन्द्रियों का नियमन करते हैं); च—एवं; तत्—उनका (देवताओं की); अनुग्रहः—कृपा (जिसके द्वारा इन्द्रियाँ कार्य कर सकती हैं); अवबोधः—निर्णय लेने की शक्ति; भवान्—आप; बुद्धेः—बुद्धि की; जीवस्य—जीव की; अनुस्मृतिः—स्मरण रखने की शक्ति; सती—सही सही।

आप वस्तुओं को प्रकट करने की इन्द्रिय-शक्ति, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता तथा ऐन्द्रिय कार्यो को करने के इन देवताओं द्वारा दिये गये अधिकार हैं। आप निर्णय लेने की बुद्धि-क्षमता तथा जीव द्वारा वस्तुओं को सही सही स्मरण रखने की क्षमता हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इंगित किया है कि जब भी कोई इन्द्रिय अपने विषय में व्यस्त रहती है, तो उस विशेष इन्द्रिय अंग के अधिष्ठाता देवता को अपनी स्वीकृति देनी होती है। आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक में आये अनुस्मृति शब्द का एक उच्च भाव दिया है—नित्य आत्मा के रूप में अपने आपको मान्यता देना।

भूतानामसि भूतादिरिन्द्रियाणां च तैजसः ।

वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

भूतानाम्—भौतिक तत्त्वों के; असि—हो; भूत-आदिः—उनका स्रोत, तमोगुणी मिथ्या अहंकार; इन्द्रियाणाम्—इन्द्रियों के; च—तथा; तैजसः—रजोगुणी मिथ्या अहंकार; वैकारिकः—सतोगुणी मिथ्या अहंकार; विकल्पानाम्—सृजनकारी देवताओं के; प्रधानम्—अप्रकट सम्पूर्ण भौतिक शक्ति; अनुशायिनम्—आधारभूत।

आप ही तमोगुणी मिथ्या अहंकार हैं, जो भौतिक तत्त्वों का स्रोत है; आप रजोगुणी मिथ्या अहंकार हैं, जो शारीरिक इन्द्रियों का स्रोत है; सतोगुणी मिथ्या अहंकार हैं, जो देवताओं का स्रोत है तथा आप ही अप्रकट सम्पूर्ण भौतिक शक्ति हैं, जो हर वस्तु की मूलाधार है।

नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ।
यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

नश्वरेषु—नश्वर; इह—इस संसार में; भावेषु—जीवों में; तत्—वह; असि—हो; त्वम्—तुम; अनश्वरम्—अनश्वर; यथा—जिस तरह; द्रव्य—पदार्थ के; विकारेषु—रूपान्तरों में; द्रव्य-मात्रम्—स्वयंपदार्थ; निरूपितम्—सुनिश्चित किया हुआ।

आप इस जगत की समस्त नश्वर वस्तुओं में से एकमात्र अनश्वर जीव हैं, जिस तरह कोई मूलभूत वस्तु अपरिवर्तित रहती दिखती है, जबकि उससे बनी वस्तुओं में रूपान्तर आ जाता है।

सत्त्वग्रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ।
त्वय्यद्वा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम् रजः तमः इति—सतो, रजो तथा तमोगुण नामक; गुणाः—प्रकृति के गुण; तत्—उनके; वृत्तयः—कार्य; च—तथा; याः—जो; त्वयि—तुममें; अद्वाः—प्रकट रूप से; ब्रह्मणि—परब्रह्म में; परे—परम; कल्पिताः—नियोजित; योग-मायया—योगमाया (भगवान् की अन्तरंगा शक्ति जो उनकी लीलाओं को सुगम बनाती है) द्वारा।

प्रकृति के गुण—यथा सतो, रजो तथा तमो गुण—अपने सारे कार्यो समेत आप अर्थात् परम सत्य के भीतर आपकी योगमाया की व्यवस्था के द्वारा सीधे प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : वसुदेव के इस वर्णन का कि परमेश्वर किस तरह अपना विस्तार तीनों गुणों के फलों के रूप में करते हैं, संभवतः यह गलत अर्थ लगाया जा सकता है कि भगवान् का गुणों द्वारा स्पर्श होता है या कि उनका भी संहार हो सकता है। इन भ्रान्तियों के निराकरण हेतु वसुदेव कहते हैं कि तीनों गुण तथा उनके फल भगवान् की सृजनात्मक शक्ति योगमाया की व्यवस्था से कार्य करते हैं। यह योगमाया पूरी तरह भगवान् के नियंत्रण में रहती है। इस तरह भगवान् कभी भी किसी भौतिक स्पर्श से लेशमात्र भी कलुषित नहीं होते।

तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ।
त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाव्यावहारिकः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; न—नहीं; सन्ति—हैं; अमी—ये; भावाः—जीव; यर्हि—जब; त्वयि—तुममें; विकल्पिताः—व्यवस्थित; त्वम्—तुम; च—भी; अमीषु—इनके भीतर; विकारेषु—सृष्टि के फल, विकार; हि—निस्सन्देह; अन्यदा—किसी अन्य समय; अव्यावहारिकः—अ-भौतिक।

इस तरह प्रकृति के विकार स्वरूप ये सृजित जीव तभी विद्यमान रहते हैं, जब भौतिक

प्रकृति उन्हें आपके भीतर प्रकट करती है। उस समय आप भी उनके भीतर प्रकट होते हैं। किन्तु सृजन के ऐसे अवसरों के अतिरिक्त आप दिव्य सत्य की भाँति अकेले रहते हैं।

तात्पर्य : जब सामयिक संहार के समय यह ब्रह्माण्ड समाप्त कर दिया जाता है, तो सारे जड़ पदार्थ तथा जीवों के शरीर जो अभी तक भगवान् की माया द्वारा प्रकट थे अब उनकी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। तब चूँकि भगवान् ब्रह्माण्ड के विलय के समय उनके साथ कोई संसर्ग नहीं रखते, इसलिए वे वस्तुएँ आगे अस्तित्व में नहीं रहती। दूसरे शब्दों में, जब भगवान् भौतिक जगत की सृष्टि तथा उसके पालन की ओर ध्यान फेरते हैं, तभी भौतिक स्वरूपों का असली कार्यात्मक अस्तित्व होता है। भगवान् कभी भी किसी भी भौतिक अर्थ में इन पदार्थों के “भीतर” नहीं रहते लेकिन निर्विशेष ब्रह्म के रूप में वे उन सबों में कृपा करके व्याप्त रहते हैं और परमात्मा के रूप में वे अणु अणु में प्रवेश करते हैं और जीवात्माओं के साथ उनके प्रत्येक शरीर में भी रहते हैं। *भगवद्गीता* (९.४-५) में भगवान् ने इसी बात का वर्णन अपनी वाणी के द्वारा किया है—

मया ततमिदं सर्वम् जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्वस्थितः ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।

भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

“मेरे अव्यक्त रूप में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरे द्वारा व्याप्त रहता है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं रहता। तो भी हर वस्तु जिसका सृजन होता है, वह मुझमें स्थित नहीं रहती। मेरे योग-ऐश्वर्य को तो देखो! यद्यपि मैं सारे जीवों का पालनकर्ता हूँ और यद्यपि मैं सर्वत्र हूँ, तो भी मैं इस विराट जगत का अंश नहीं हूँ, क्योंकि मैं ही सृष्टि का मूल स्रोत हूँ।”

गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ।

गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गुण—गुणों के; प्रवाहे—प्रवाह में; एतस्मिन्—इस; अबुधाः—अज्ञानी; तु—लेकिन; अखिल—हर वस्तु का; आत्मनः—आत्मा का; गतिम्—गन्तव्य; सूक्ष्माम्—दिव्य; अबोधेन—ज्ञान का अभाव होने से; संसरन्ति—जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमते हैं; इह—इस जगत में; कर्मभिः—भौतिक कार्य से बाध्य होकर।

वे सचमुच अज्ञानी हैं, जो इस जगत में भौतिक गुणों के निरन्तर प्रवाह के भीतर बन्दी रहते

हुए आपको अपने चरम सूक्ष्म गन्तव्य परमात्मा स्वरूप जान नहीं पाते। अपने अज्ञान के कारण भौतिक कर्म का बन्धन ऐसे जीवों को जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमने के लिए बाध्य कर देता है।

तात्पर्य : जो व्यक्ति ईश्वर के दास रूप में अपनी सच्ची पहचान भूल जाता है, वह इस जगत में भौतिक शरीरों की श्रृंखला में बन्दी बनाये जाने के लिए भेज दिया जाता है। भूल से इन शरीरों के साथ अपनी पहचान करने के कारण ऐसा बद्धजीव कर्मफल के फलस्वरूप उत्पन्न दुख का भोग करता है। दयावान वैष्णव होने के नाते वसुदेव उन बद्धजीवों के कष्ट के प्रति शोक प्रकट करते हैं, जिनके दुख को, जो उनके अज्ञान का परिणाम है भगवान् कृष्ण की भक्ति के नियमों की जानकारी से दूर किया जा सकता है।

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ।
स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यदृच्छया—जैसे तैसे; नृताम्—मानव पद; प्राप्य—प्राप्त करके; सु-कल्पाम्—उपयुक्त; इह—इस जीवन में; दुर्लभाम्—प्राप्त करना कठिन; स्व—अपने; अर्थे—कल्याण के विषय में; प्रमत्तस्य—प्रमत्त अर्थात् मूढ़ के; वयः—आयु; गतम्—बीती हुई; त्वत्—तुम्हारी; मायया—माया द्वारा; ईश्वर—हे प्रभु।

सौभाग्य से जीव स्वस्थ मनुष्य-जीवन प्राप्त कर सकता है, जो कि विरले ही प्राप्त होने वाला सुअवसर होता है। किन्तु हे प्रभु, यदि इतने पर भी वह अपने लिए, जो सर्वोत्तम है, उसके विषय में मोहग्रस्त रहता है, तो आपकी माया उसको अपना सारा जीवन नष्ट करने के लिए बाध्य कर सकती है।

असावहम्ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ।
स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

असौ—यह; अहम्—मैं; मम—मेरा; एव—निस्सन्देह; एते—ये; देहे—शरीर में; च—तथा; अस्य—इसका; अन्वय-आदिषु—सन्तान तथा अन्य सम्बद्ध वस्तुओं में; स्नेह—स्नेह को; पाशैः—रस्सियों से; निबध्नाति—बाँधते हैं; भवान्—आप; सर्वम्—समस्त; इदम्—इस; जगत्—संसार को।

आप स्नेह की रस्सियों से इस सारे संसार को बाँधे रहते हैं, अतः जब लोग अपने भौतिक शरीरों पर विचार करते हैं, तो वे सोचते हैं, “यह मेरा है” और जब वे अपनी सन्तान तथा अन्य सम्बन्धियों पर विचार करते हैं, तो वे सोचते हैं, “ये मेरे हैं।”

युवां न नः सुतौ साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरौ ।

भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

युवाम्—तुम दोनों; न—नहीं; नः—हमारे; सुतौ—पुत्र; साक्षात्—प्रत्यक्ष; प्रधान-पुरुष—प्रकृति तथा इसके स्रष्टा (महाविष्णु) के; ईश्वरौ—परम नियन्ता; भू—पृथ्वी के; भार—बोझा; क्षत्र—राजा; क्षपणे—विनाश करने के लिए; अवतीर्णौ—अवतरित हुए; तथा—ऐसा; आत्थ—आपने कहा है; ह—निस्सन्देह ।

आप दोनों हमारे पुत्र नहीं हैं, अपितु प्रकृति तथा उसके स्रष्टा (महाविष्णु) दोनों ही के स्वामी हैं। जैसा कि आपने स्वयं हमसे कहा है, आप पृथ्वी को उन शासकों से मुक्त करने के लिए अवतरित हुए हैं, जो उस पर अत्यधिक भार बने हुए हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार इस श्लोक में वसुदेव स्वयं तथा अपनी पत्नी को ऐसे उत्तम उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो भौतिक रूप से भ्रमित हैं। यद्यपि कंस के बंदीगृह में अपने जन्म के समय कृष्ण ने वसुदेव तथा देवकी को बतला दिया था कि उनका मन्तव्य अवांछित क्षत्रियों से पृथ्वी को मुक्त करना है, फिर भी उनके माता-पिता उन्हें अपने असहाय पुत्र के रूप में मानते रहे, जिसे राजा कंस से सुरक्षा की आवश्यकता थी। वास्तव में वसुदेव तथा देवकी दोनों भगवान् की अन्तरंगा शक्ति के पूर्ण निर्देशन में भगवान् की दिव्य जन्म-लीला में भाग ले रहे थे। वसुदेव आध्यात्मिक दीनतावश इस तरह स्वयं की आलोचना कर रहे हैं।

तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्द-

मापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ।

एतावतालमलमिन्द्रियलालसेन

मर्त्यात्मदृक्त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; ते—तुम्हारी; गतः—आया हुआ; अस्मि—हूँ; अरणम्—शरण के लिए; अद्य—आज; पाद-अरविन्दम्—चरणकमलों पर; आपन्न—शरणागतों के लिए; संसृति—भौतिक बन्धन का; भय—डर; अपहम्—जो दूर करते हैं; आर्त—दुखियों के; बन्धो—हे मित्र; एतावता—इतना; अलम् अलम्—बस, बस (बहुत हुआ); इन्द्रिय—इन्द्रिय-भोग के लिए; लालसेन—लालसा से; मर्त्य—मरणशील (भौतिक देह) के रूप में; आत्म—स्वयं; दृक्—जिनकी दृष्टि; त्वयि—तुम्हारे प्रति; परे—परम; यत्—जिसके कारण (लालसा); अपत्य—सन्तान; बुद्धिः—मानसिकता ।

इसलिए, हे दुखियों के मित्र, अब मैं शरण के लिए आपके चरणकमलों के पास आया हूँ—ये वही चरणकमल हैं, जो शरणागतों के सारे संसारिक भय को दूर करने वाले हैं। बस, इन्द्रिय-भोग की लालसा बहुत हो चुकी, जिसके कारण मैं अपनी पहचान इस मर्त्य शरीर से

करता हूँ और आपको अर्थात् परम पुरुष को अपना पुत्र समझता हूँ।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी का सुझाव है कि वसुदेव यहाँ अपनी भर्त्सना कर रहे हैं कि वे भगवान् के पिता होने के नाते विशेष ऐश्वर्य पाने का विचार कर रहे हैं। इस तरह वसुदेव अपने को ब्रजराज नन्द से विपरीत मानते हैं, जो शुद्ध भगवत्प्रेम से तुष्ट थे और जिन्हें और कुछ भी नहीं चाहिए था।

सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ

सञ्जज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ।

नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि

को वेद भूमन् उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सूती-गृहे—प्रसूति-गृह में; ननु—निस्सन्देह; जगाद—कहा; भवान्—आप; अजः—अजन्मा भगवान्; नौ—हमको; सञ्जज्ञे—आपने जन्म लिया; इति—इस प्रकार; अनु-युगम्—युग-युग में; निज—अपना; धर्म—धर्म; गुप्त्यै—रक्षा करने के लिए; नाना—विविध; तनूः—दैवी शरीर; गगन-वत्—बादल की तरह; विदधत्—धारण करके; जहासि—छिपा देते हो; कः—कौन; वेद—जान सकता है; भूमन्—सर्वव्यापी भगवान् का; उरु-गाय—हे अत्यधिक प्रशंसित; विभूति—ऐश्वर्यशाली अंशों के; मायाम्—योगमयी मोहक शक्ति।

निस्सन्देह आपने हमें प्रसूति-गृह में ही बतला दिया था कि आप अजन्मा हैं और इसके पूर्व के युगों में कई बार हमारे पुत्र के रूप में जन्म ले चुके हैं। आपने अपने धर्म की रक्षा करने के लिए इन दिव्य शरीरों को प्रकट करने के बाद उन्हें छिपा लिया, जिस तरह बादल प्रकट होते हैं और लुप्त हो जाते हैं। हे परम महिमामय सर्वव्यापक भगवान्, आपके विभूति अंशों की भ्रान्तिपूर्ण माया को कौन समझ सकता है?

तात्पर्य : पिछले जन्मों में सुतपा तथा पृश्नि के रूप में वसुदेव तथा देवकी के यहाँ भगवान् कृष्ण ने सर्वप्रथम जन्म लिया था। बाद में वे कश्यप तथा अदिति के नाम से उनके माता-पिता बने। अब तीसरी बार वे वसुदेव-देवकी के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे।

श्रीशुक उवाच

आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः ।

प्रत्याह प्रश्रयानघ्नः प्रहसन्श्लक्ष्णया गिरा ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; आकर्ण्य—सुनकर; इत्थम्—इस तरह से; पितुः—अपने पिता के; वाक्यम्—कथन; भगवान्—भगवान् ने; सात्वत-ऋषभः—यदुओं में श्रेष्ठ; प्रत्याह—उत्तर दिया; प्रश्रय—विनयपूर्वक; आनम्रः—झुकाकर (अपना सिर); प्रहसन्—जोर से हँसते हुए; श्लक्ष्णया—धीमी; गिरा—वाणी से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने पिता के वचनों को सुनने के बाद सात्वतों के नायक भगवान् ने विनयपूर्वक अपना सिर झुकाया और मन्द-मन्द हँसे और फिर मृदुल वाणी में उत्तर दिया।

तात्पर्य : कृष्ण ने अपने पिता द्वारा अपनी प्रशंसा सुनने के बाद जो कुछ सोचा उसका वर्णन श्रील जीव गोस्वामी करते हैं, “वसुदेव को शाश्वत रूप से मेरा पिता होने का सम्मान प्राप्त हुआ है, जिसकी कामना ब्रह्मा जैसे देवता भी नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें चाहिए कि वे मेरे ईश्वरत्व के पक्ष के बारे में इतने निमग्न न हों। साथ ही, उनके प्रति आदर-भाव से मुझे बहुत उलझन हो रही है। इसीलिए मैंने कंस का वध करने के बाद अपने तथा बलराम के प्रति उनके शुद्ध पितृ-प्रेम को प्रबल करने के लिए विशेष प्रयास किया था। किन्तु दुर्भाग्यवश, अब इन मुनियों के कथनों से वसुदेव तथा देवकी में मेरे ईश्वरत्व के प्रति पूर्व की कुछ जानकारी पुनः जागृत की जा रही है।

श्रीभगवानुवाच

वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ।

यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; वचः—शब्द; वः—आपके; समवेत—उपयुक्त; अर्थम्—अर्थ वाले; तात—हे पिता; एतत्—ये; उपमन्महे—मैं मानता हूँ; यत्—क्योंकि; नः—हम; पुत्रान्—आपके पुत्रों को; समुद्दिश्य—बतलाकर; तत्त्व—तथ्यों की कोटियों के; ग्रामः—सम्पूर्ण रूप से; उदाहृतः—सामने रखा।

भगवान् ने कहा : हे पिताश्री, मैं आपके वचनों को सर्वथा उपयुक्त मानता हूँ, क्योंकि आपने हमें अर्थात् अपने पुत्रों का सन्दर्भ देते हुए संसार की विविध कोटियों की व्याख्या की है।

तात्पर्य : अपने को वसुदेव के आश्रित पुत्र के रूप में मानते हुए भगवान् कृष्ण अपने पिता द्वारा दिये गये शिक्षाप्रद उपदेशों के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

अहं यूयमसावार्यं इमे च द्वारकाउकसः ।

सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृग्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; यूयम्—आपको; असौ—वह; आर्यः—मेरे पूज्य भ्राता (बलराम); इमे—ये; च—तथा; द्वारका-ओकसः—द्वारकावासी; सर्वे—सभी; अपि—ही; एवम्—इसी तरह से; यदु-श्रेष्ठ—हे यदुश्रेष्ठ; विमृग्याः—माना जाना चाहिए; स—सहित; चर—चेतन; अचरम्—जड़।

हे यदुश्रेष्ठ, न केवल मुझे, अपितु आपको, मेरे पूज्य भ्राता को तथा ये द्वारकावासी इन सबों को भी इसी दार्शनिक आलोक में देखा जाना चाहिए। दरअसल हमें जड़ तथा चेतन दोनों ही प्रकार के समस्त सृष्टि को इसमें सम्मिलित करना चाहिए।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण अपने प्रति अपने माता-पिता के घनिष्ठ सम्बन्ध को संरक्षित करने के लिए अपने पिता वसुदेव से इस कथन में समस्त जगत के एकत्व पर बल दे रहे हैं। वसुदेव को अपने पुत्रों की महानता का स्मरण कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए मुनियों की बातों को सुनकर हो आया। किन्तु तो भी उनके विस्मय की अनुभूति कृष्ण के साथ उनके घनिष्ठ पितृ-सम्बन्ध को नष्ट कर रही थी इसलिए कृष्ण इस आश्चर्य को दूर करना चाहते थे।

यहाँ भगवान् जिस “एकत्व” की बात कह रहे हैं उसका हमें गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिये। उपनिषदों के सूक्ष्म वचन प्रायः निर्विशेषवादियों को यह विश्वास करने के लिए दिग्भ्रमित करते हैं कि सारा जगत एक है, उसमें विविधता है ही नहीं। कुछ उपनिषद मंत्र ईश्वर तथा उनकी सृष्टि के एकत्व पर बल देते हैं जबकि कुछ उनमें अन्तर बताते हैं। उदाहरणार्थ, *तत् त्वम् असि श्वेतकेतो* (हे श्वेतकेतु, तुम वही हो)—यह *अभेदवाक्य* है—ऐसा मंत्र जो इसकी पुष्टि करता है कि सारी वस्तुएँ ईश्वर से एकाकार हैं और वे उनके आश्रित अंश हैं। किन्तु उपनिषदों में ऐसे कई *भेदवाक्य* भी हैं जिनमें ब्रह्म के विभेदक गुणों का वर्णन हुआ है। यथा यह कथन—*क एवान्यात् कः प्राण्याद् यद्येष आकाश आनन्दो न स्यात्, एष एवानन्दयति*—“यदि यह अनन्त ब्रह्म मूल भोक्ता न होता तो सृष्टि को गतिशीलता तथा सारे जीवों को जीवनदान कौन देता? निस्सन्देह, एकमात्र वह ही समस्त आनन्द का स्रोत है।” (*तैत्तिरीय उपनिषद २.७.१*) भगवान् की मोहमयी माया के वश में आकर ईर्ष्यालु निर्विशेषवादी *अभेदवाक्यों* का शाब्दिक अर्थ लगाते हैं और *भेदवाक्यों* का आलंकारिक अर्थ ग्रहण करते हैं। दूसरी ओर अधिकारी वैष्णव टीकाकार वैदिक मीमांसा के विश्लेषणात्मक नियमों के अनुसार तथा वेदान्त के तर्कसंगत स्थापित निर्णयों के अनुसार बाहरी तौर पर दिखने वाले परस्पर विरोधों के साथ समन्वय करके देखते हैं।

आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ।

आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

आत्मा—परमात्मा; हि—निस्सन्देह; एकः—एक; स्वयम्-ज्योतिः—आत्मज्योतिः; नित्यः—नित्य; अन्यः—पृथक् (भौतिक शक्ति से); निर्गुणः—भौतिक गुणों से मुक्त; गुणैः—गुणों के द्वारा; आत्म—स्वयं से; सृष्टैः—उत्पन्न; तत्—अपने फलों में; कृतेषु—उत्पादन; भूतेषु—भौतिक जीवों में; बहुधा—कई प्रकार का; ईयते—प्रतीत होता है ।

दरअसल परमात्मा एक है। वह आत्मज्योतिः तथा नित्य, दिव्य एवं भौतिक गुणों से रहित है। किन्तु इन्हीं गुणों के माध्यम से उसने सृष्टि की है, जिससे एक ही परम सत्य उन गुणों के अंशों में अनेक रूप में प्रकट होता है।

खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ।

आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

खम्—आकाश; वायुः—वायु; ज्योतिः—अग्नि; आपः—जल; भूः—पृथ्वी; तत्—उनके; कृतेषु—फलों में; यथा-आशयम्—विशेष स्थितियों के अनुसार; आविः—व्यक्त; तिरः—अव्यक्त; अल्प—लघु; भूरि—बृहत्; एकः—एक; नानात्वम्—अनेकरूपता; याति—धारण करता है; असौ—वह; अपि—भी ।

आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी—ये तत्त्व विविध वस्तुओं में प्रकट होते समय दृश्य, अदृश्य, लघु या विशाल बन जाते हैं। इसी तरह परमात्मा एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने उक्त श्लोक तथा पिछले श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है : एक परमात्मा अपने ही द्वारा उत्पन्न गुणों के प्रभाव से अनेक प्रतीत होता है। ऐसा कैसे है ? यद्यपि परमात्मा स्वयंप्रकाशित, नित्य, हर वस्तु से पृथक्, प्रकृति के गुणों से रहित हैं, किन्तु जब वे अपने स्वरूपों में प्रकट होते हैं, तो वे सर्वथा विपरीत लगते हैं—गुणों से युक्त नाना प्रकार के नश्वर पदार्थ। जिस तरह आकाश इत्यादि तत्त्व घटों में तथा अन्य वस्तुओं में प्रकट होने पर प्रकट तथा अप्रकट होते प्रतीत होते हैं उसी तरह परमात्मा अपने विविध रूपों में प्रकट तथा अप्रकट होते हुये प्रतीत होते हैं।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता राजन्वसुदेव उदाहृतः ।

श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; राजन्—हे राजा (परीक्षित); वसुदेवः—वसुदेव; उदाहृतः—कहे गये; श्रुत्वा—सुनकर; विनष्ट—विनष्ट; नाना—द्वैतयुक्त; धीः—बुद्धि; तूष्णीम्—मौन; प्रीत—तुष्ट; मनाः—अपने मन में; अभूत्—था ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, भगवान् द्वारा कहे गये इन उपदेशों को सुनकर वसुदेव समस्त द्वैत-भाव से मुक्त हो गये। हृदय में तुष्ट होकर वे मौन रहे।

अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ।
श्रुत्वानीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥ २७ ॥
कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् ।
स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; तत्र—उसी स्थान पर; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुश्रेष्ठ; देवकी—माता देवकी ने; सर्व—सबों की; देवता—पूज्य देवी; श्रुत्वा—सुनकर; नीतम्—वापस लाये हुए; गुरोः—अपने गुरुओं के; पुत्रम्—पुत्र को; आत्मजाभ्याम्—अपने दोनों पुत्रों द्वारा; सु—अत्यधिक; विस्मिता—चकित; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम; समाश्राव्य—स्पष्ट रूप से सम्बोधित करके; पुत्रान्—अपने पुत्रों को; कंस-विहिंसितान्—कंस द्वारा मारे गये; स्मरन्ती—स्मरण करती हुई; कृपणम्—दीनतापूर्वक; प्राह—कहा; वैक्लव्यात्—विकलता के कारण; अश्रु—आँसुओं (से पूरित); लोचना—आँखें।

हे कुरुश्रेष्ठ, उसी समय सर्वत्र पूजनीय देवकी ने अपने दोनों पुत्रों, कृष्ण तथा बलराम को सम्बोधित करने का अवसर पाया। इसके पूर्व उन्होंने अत्यन्त विस्मय के साथ यह सुन रखा था कि उनके ये पुत्र अपने गुरु के पुत्र को मृत्यु से वापस ले आये थे। अब वे कंस द्वारा वध किये गये अपने पुत्रों का चिन्तन करते हुये अत्यन्त दुखी हुईं और अश्रुपूरित नेत्रों से कृष्ण तथा बलराम से दीनतापूर्वक बोलीं।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रति वसुदेव का प्रेम विचलित हो गया था, क्योंकि उन्हें अपने पुत्र रूप में देखने और कृष्ण के ऐश्वर्य के प्रति उनकी भिन्नता के बीच विरोध उत्पन्न हो रहा था। देवकी का प्रेम भी अपने मृत पुत्रों के लिए शोक करने के कारण अन्य रीति से कुछ कुछ विचलित हो रहा था। इसलिए कृष्ण उनके इस भ्रान्त विचार को दूर करने की व्यवस्था की कि उनके सिवा कोई और ही उनका असली पुत्र है। चूँकि देवकी समस्त महापुरुषों द्वारा पूजित थीं, अतएव मातृ-स्नेह का प्रदर्शन भगवान् की योगमाया का ही प्रभाव रहा होगा, जो उनकी लीलाओं के आनंद में वृद्धि करती है। इसीलिए श्लोक ५४ में देवकी को मोहिता मायया विष्णोः—भगवान् विष्णु की अन्तरंगा शक्ति द्वारा मोहग्रस्त—कहा गया है।

श्रीदेवक्युवाच
राम रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर ।

वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपुरुषौ ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-देवकी उवाच—श्री देवकी ने कहा; राम राम—अरे राम, अरे राम; अप्रमेय-आत्मन्—हे अमाप्य परमात्मा; कृष्ण—हे कृष्ण; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईश्वर—हे स्वामी; वेद—जानती हूँ; अहम्—मैं; वाम्—तुम दोनों को; विश्व—ब्रह्माण्ड के; सृजाम्—स्रष्टाओं के; ईश्वरौ—स्वामी; आदि—मूल; पुरुषौ—दो पुरुष।

श्री देवकी ने कहा : हे राम, हे राम, हे अप्रमेय परमात्मा, हे कृष्ण, हे सभी योगेश्वरों के स्वामी, मैं जानती हूँ कि तुम दोनों समस्त ब्रह्माण्ड सृष्टिकार्ताओं के परम शासक आदि भगवान् हो।

कलविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ।

भूमेभारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

काल—समय द्वारा; विध्वस्त—विनष्ट; सत्त्वानाम्—अच्छे गुणों वाले; राज्ञाम्—राजाओं (के मारने) के लिए; उत्-शास्त्र—शास्त्रीय नियमों से बाहर; वर्तिनाम्—कार्य करने वाले; भूमेः—पृथ्वी के लिए; भारायमाणानाम्—भार बनते हुए; अवतीर्णौ—(तुम दोनों) अवतरित हुए हो; किल—निस्सन्देह; अद्य—आज; मे—मुझसे।

मुझसे जन्म लेकर तुम इस जगत में उन राजाओं का वध करने के लिए अवतरित हुए हो, जिनके उत्तम गुण वर्तमान युग के द्वारा विनष्ट हो चुके हैं और जो इस प्रकार से शास्त्रों की सत्ता का उल्लंघन करते हैं और पृथ्वी का भार बनते हैं।

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ।

भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; अंश—अंश के; अंश—अंश के; अंश—अंश के; भागेन—एक अंश द्वारा; विश्व—ब्रह्माण्ड की; उत्पत्ति—जन्म; लय—विलय; उदयाः—तथा सम्पन्नता; भवन्ति—उदय होते हैं; किल—निस्सन्देह; विश्व-आत्मन्—हे विश्व के आत्मा; तत्—उसके पास; त्वा—तुम; अद्य—आज; अहम्—मैं; गतिम्—शरण के लिए; गता—आई हुई।

हे विश्वात्मा, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पालन तथा संहार—ये सभी आपके अंश के अंश के अंश के भी एक अंश द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। हे भगवान्, मैं आज आपकी शरण में आई हूँ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है : वैकुण्ठपति नारायण श्रीकृष्ण के केवल एक अंश हैं। महाविष्णु जो कि प्रथम स्रष्टा हैं, वे भगवान् नारायण के अंश हैं। सम्पूर्ण भौतिक शक्ति महाविष्णु की चितवन से निकलती है और तीनों गुण इसी सम्पूर्ण भौतिक शक्ति के विभिन्नांश हैं। इस तरह अपने अंशों के माध्यम से काम करने वाले श्रीकृष्ण ही ब्रह्माण्ड का सृजन,

पालन तथा संहार करते हैं ।

चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ ।
 आनित्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥
 तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ।
 भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहतान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

चिरात्—बहुत समय से; मृत—मरे हुए; सुत—पुत्र; आदाने—वापस लाने के लिए; गुरुणा—अपने गुरु द्वारा; किल—ऐसा सुना गया है; चोदितौ—आज्ञा दिये जाकर; आनित्यथुः—तुम उसे ले आये; पितृ—पूर्वजों के; स्थानात्—स्थान से; गुरवे—अपने गुरु को; गुरु-दक्षिणाम्—गुरु-दक्षिणा के रूप में; तथा—उसी तरह; मे—मेरी; कुरुतम्—पूरा करो; कामम्—इच्छा; युवाम्—तुम दोनों; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईश्वरौ—हे प्रभुओ; भोज-राज—भोज के राजा (कंस) द्वारा; हतान्—मारे हुए; पुत्रान्—पुत्रों को; कामये—मैं चाहती हूँ; द्रष्टुम्—देखना; आहतान्—वापस लाये हुए ।

ऐसा कहा जाता है कि जब आपके गुरु ने अपने बहुत पहले मर चुके पुत्र को वापस लाने के लिए आपको आदेश दिया, तो आप गुरु-दक्षिणा के प्रतीकस्वरूप उसे पूर्वजों के धाम से वापस ले आये। हे योगेश्वरों के भी ईश्वर, मेरी इच्छा को भी उसी तरह पूरी कीजिये। कृपया भोजराज द्वारा मारे गये मेरे पुत्रों को वापस ला दीजिये, जिससे मैं उन्हें फिर से देख सकूँ।

ऋषिरुवाच

एवं सञ्चोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ।
 सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ऋषिः उवाच—ऋषि (श्रीशुकदेव) ने कहा; एवम्—इस तरह; सञ्चोदितौ—याचना किये जाने पर; मात्रा—माता द्वारा; रामः—बलराम; कृष्णः—कृष्ण; च—तथा; भारत—हे भरतवंशी (परीक्षित); सुतलम्—सुतल नामक अधोलोक, जिसमें बलि महाराज शासन करते हैं; संविविशतुः—प्रवेश किया; योग-मायायम्—अपनी योगमाया को; उपाश्रितौ—काम में लाते हुए ।

शुकदेव मुनि ने कहा : हे भारत, अपनी माता द्वारा इस प्रकार याचना किये जाने पर कृष्ण तथा बलराम ने अपनी योगमाया शक्ति का प्रयोग करके सुतल लोक में प्रवेश किया ।

तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड्
 विश्वात्मदैवं सुतरां तथात्मनः ।
 तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः
 सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—वहाँ; प्रविष्टौ—(दोनों ने) प्रवेश करके; उपलभ्य—देखकर; दैत्य-राट्—दैत्यों के राजा (बलि); विश्व—सारे विश्व के; आत्म—आत्मा; दैवम्—तथा पर-देव; सुतराम्—विशेष रूप से; तथा—भी; आत्मनः—अपना; तत्—उनका; दर्शन—

दर्शन करने के कारण; आह्लाद—प्रसन्नता से; परिप्लुत—विभोर; आशयः—हृदय वाले; सद्यः—तुरन्त; समुत्थाय—खड़े होकर; ननाम—उसने प्रणाम किया; स—सहित; अन्वयः—उनके संगियों (कुटुम्बियों)।

जब दैत्यराज बलि ने दोनों प्रभुओं को आते देखा, तो उसका हृदय प्रसन्नता के मारे फूल उठा, क्योंकि वह उन्हें परमात्मा तथा सम्पूर्ण विश्व के पूज्य देव के रूप में, विशेष रूप से अपने पूज्य देव के रूप में, जानता था। अतः वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और अपने सारे पार्षदों सहित उसने उन्हें झुक कर प्रणाम किया।

तयोः समानीय वरासनं मुदा
निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ।
दधार पादाववनिज्य तज्जलं
सवृन्द आब्रह्म पुनद्यदम्बु ह ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उनके लिए; समानीय—लाकर; वर—उच्च; आसनम्—आसन; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; निविष्टयोः—आसन ग्रहण किये हुए; तत्र—वहाँ; महा-आत्मनोः—महापुरुषों के; तयोः—उनके; दधार—पकड़ लिया; पादौ—पाँव; अवनिज्य—धोकर; तत्—उस; जलम्—जल को; स—सहित; वृन्दः—अपने अनुयायियों; आ-ब्रह्म—ब्रह्मा तक को; पुनत्—पवित्र बनाने वाला; यत्—जो; अम्बु—जल; ह—निस्सन्देह।

बलि ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें उच्च आसन प्रदान किया। जब वे बैठ गये, तो उसने दोनों प्रभुओं के पाँव पखारे। फिर उसने उस जल को, जो ब्रह्मापर्यन्त सारे जगत को पवित्र बनाने वाला है, लेकर अपने तथा अपने अनुयायियों के ऊपर छिड़का।

समर्हयामास स तौ विभूतिभि-
मर्हार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ।
ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः
स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

समर्हयाम् आस—पूजा की; सः—उसने; तौ—उनको; विभूतिभिः—अपनी सम्पत्ति से; महा-अर्ह—अत्यन्त मूल्यवान्; वस्त्र—वस्त्रों; आभरण—आभूषणों; अनुलेपनैः—तथा सुगन्धित लेप से; ताम्बूल—पान; दीप—दीपक; अमृत—अमृत तुल्य; भक्षण—भोजन; आदिभिः—इत्यादि से; स्व—अपने; गोत्र—परिवार; वित्त—सम्पत्ति का; आत्म—तथा स्व; समर्पणेन—समर्पण द्वारा; च—तथा।

उसने अपने पास उपलब्ध सारी सम्पदा—बहुमूल्य वस्त्र, गहने, सुगन्धित चन्दन-लेप, पान, दीपक, अमृत तुल्य भोजन इत्यादि—से उन दोनों की पूजा की। इस तरह उसने उन्हें अपने परिवार की सारी धन-सम्पदा तथा स्वयं अपने को भी अर्पित कर दिया।

तात्पर्य : बलि महाराज की भक्तिमयी प्रवृत्ति का यथेष्ट उदाहरण पूर्ण समर्पण के रूप में विख्यात

है। जब विष्णु भगवान् ब्रह्मचारी वेश में दान लेने उनके पास गये तो बलि ने अपना सर्वस्व दे डाला और जब उनके पास देने को कुछ भी शेष न रहा तो उन्होंने स्वयं को भगवान् के नित्यदास के रूप में अर्पित कर दिया।

भक्ति की नौ मानक विधियाँ हैं जिनमें अन्तिम *आत्म-समर्पण* सारे प्रयत्नों की चरम परिणति है, जैसाकि बलि दैत्यराज ने शिक्षा दी है। यदि कोई व्यक्ति धन, बल, बुद्धि इत्यादि के द्वारा भगवान् पर अपना प्रभाव डालना चाहता है, किन्तु अपने को उनका दास नहीं समझता, तो उसकी तथाकथित भक्ति दिखावा मात्र है।

स इन्द्रसेनो भगवत्पदाम्बुजं

बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ।

उवाच हानन्दजलाकुलेक्षणः

प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; इन्द्र-सेनः—इन्द्र की सेना को जीतने वाला, बलि; भगवत्—दोनों विभुओं के; पाद-अम्बुजम्—चरणकमलों को; बिभ्रत्—पकड़ते हुए; मुहुः—बारम्बार; प्रेम—प्रेमवश; विभिन्नया—द्रवित हो रहे; धिया—हृदयसे; उवाच ह—कहा; आनन्द—अपने आनन्द से उत्पन्न; जल—जल (अश्रु) से; आकुल—पूरित; ईक्षणः—नेत्रों वाला; प्रहृष्ट—सीधे खड़े होते हुए; रोमा—शरीर के रोएँ; नृप—हे राजा (परीक्षित); गद्गद—रुद्ध; अक्षरम्—जिनके शब्द।

दोनों विभुओं के चरणकमलों को बारम्बार पकड़ते हुए, इन्द्र की सेना के विजेता, गहन प्रेम से द्रवित हृदय वाले बलि ने कहा : हे राजन्, उनकी आँखों में प्रेमाश्रु भरे थे और उनके अंगों के रोएँ खड़े हुए थे। वह लड़खड़ाती वाणी से बोलने लगा।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण में लीला पुरुषोत्तम श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है : “राजा बलि को ऐसे दिव्य सुख का अनुभव हो रहा था कि वे बारम्बार भगवान् के चरणकमलों को पकड़ कर अपने वक्षस्थल पर रख लेते थे, तो कभी उन श्रीचरणों को अपने मस्तक पर रख लेते थे। इस प्रकार वे दिव्य आनन्द का अनुभव कर रहे थे। उनके नेत्रों से प्रेमवश अश्रु प्रवाहित होने लगे तथा उन्हें रोमांच हो आया।”

बलिरुवाच

नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ।

साङ्ख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

बलि: उवाच—बलि ने कहा; नमः—नमस्ते; अनन्ताय—अनन्त को; बृहते—महानतम जीव; नमः—नमस्कार; कृष्णाय—कृष्ण को; वेधसे—स्रष्टा; साङ्ख्य—सांख्य विश्लेषण के; योग—तथा योग के; वितानाय—प्रसार करने वाले को; ब्रह्मणे—ब्रह्म को; परम-आत्मने—परमात्मा ।

राजा बलि ने कहा : समस्त जीवों में महानतम अनन्त देव को नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के स्रष्टा भगवान् कृष्ण को नमस्कार है, जो सांख्य तथा योग के सिद्धान्तों का प्रसार करने के लिए निर्विशेष ब्रह्म तथा परमात्मा के रूप में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यहाँ पर कथित अनन्त की पहचान बलरामजी के रूप में करते हैं, जिनसे दिव्य सर्प अनन्त शेष का विस्तार होता है। निर्विशेष ब्रह्म सांख्य दार्शनिकों के ग्रंथों के उद्गम हैं, जबकि योग के ग्रंथ भगवान् के साकार रूप परमात्मा से प्रसारित होते हैं।

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ।
रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

दर्शनम्—दर्शन; वाम्—तुम दोनों का; हि—निस्सन्देह; भूतानाम्—सारे जीवों के लिए; दुष्प्रापम्—विरले ही प्राप्त होने वाला; च अपि—फिर भी; अदुर्लभम्—प्राप्त करना कठिन नहीं; रजः—रजो; तमः—तथा तमो गुण; स्वभावानाम्—स्वभाव वालों के लिए; यत्—जिसमें; नः—हमारे द्वारा; प्राप्तौ—प्राप्त; यदृच्छया—अहैतुक रूप में।

अनेक जीवों के लिए आप दोनों विभुओं के दर्शन दुर्लभ हैं, किन्तु तमोगुण तथा रजोगुण में स्थित हमारे जैसे व्यक्ति भी सुगमता से आपके दर्शन पा सकते हैं, जब आप स्वेच्छा से प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : दैत्यों के कुल में जन्म लेने के कारण निम्न पद पर स्थित बतलाते हुए बलि महाराज ने अपने को सारे गुणों से रहित बताया, अतः कृष्ण तथा बलराम उन्हें क्योंकर दर्शन देते? बलि ने सोचा कि मुझ जैसे दैत्य तो क्या बड़े बड़े ज्ञानी तथा योगी भी भगवान् को प्रसन्न नहीं कर पाते, जब तक वे अपना गर्व तथा ईर्ष्या त्याग नहीं देते।

दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥
विशुद्धसत्त्वधाम्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ।
नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥
केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ।

न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

दैत्य-दानव—दैत्य तथा दानव; गन्धर्वाः—गन्धर्वगण; सिद्ध-विद्याधर-चारणाः—सिद्ध, विद्याधर तथा चारण देवतागण; यक्ष—यक्षगण; रक्षः—राक्षसगण (मनुष्यों को खा जाने वाले भूत-प्रेत); पिशाचाः—मांसाहारी पिशाचगण; च—तथा; भूत—भूत-प्रेत; प्रमथ-नायकाः—प्रमथ तथा नायक नामक भूत-प्रेत; विशुद्ध—नितान्त शुद्ध; सत्त्व—सतोगुण के; धाम्नि—धाम; अद्धा—प्रत्यक्ष; त्वयि—तुम में; शास्त्र—शास्त्रों से युक्त; शरीरिणि—ऐसे शरीर के स्वामी; नित्यम्—सदैव; निबद्ध—स्थिर; वैराः—शत्रुता में; ते—वे; वयम्—हम; च—भी; अन्ये—अन्य; च—तथा; तादृशाः—उन्हीं की तरह; केचन—कुछ; उद्बद्ध—विशेष दुराग्रही, जिद्दी; वैरेण—तिरस्कार से; भक्त्या—भक्ति से; केचन—कोई; कामतः—काम से उत्पन्न; न—नहीं; तथा—उसी तरह; सत्त्व—सतोगुण द्वारा; संरब्धाः—अधीन; सन्निकृष्टाः—आकृष्ट; सुर—देवतागण; आदयः—इत्यादि।

ऐसे अनेक लोग जो आपके प्रति शत्रुता में निरन्तर लीन रहते थे, अंत में आपके प्रति आकृष्ट हो गये, क्योंकि आप शुद्ध सत्त्वगुण के साकार रूप हैं और आपका दिव्य स्वरूप शास्त्रों से युक्त है। इन सुधरे हुए शत्रुओं में दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथ तथा नायक एवं हम तथा हमारे जैसे अनेक लोग सम्मिलित हैं। हममें से कुछ तो विशेष घृणा के कारण और कुछ काम-वासना पर आधारित भक्तिभाव से आपके प्रति आकृष्ट हुए हैं। किन्तु देवता तथा भौतिक सतोगुण से मुग्ध अन्य लोग आपके प्रति वैसे आकर्षण का अनुभव नहीं कर पाते।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने इन श्लोकों की व्याख्या इस प्रकार की है : जब गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा चारण दैत्यों तथा दानवों का नायकत्व स्वीकार करते हैं, तो वे भगवान् के प्रतिद्वन्दी होते हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच इत्यादि इसलिए शत्रुता रखते हैं क्योंकि वे सामान्यतया अज्ञान (तमोगुण) से आच्छादित रहते हैं। कुछ धूर्त शुद्ध तमोगुणी हैं यथा शिशुपाल तथा पौण्ड्रक जो भगवान् को शत्रु के रूप में ध्यान करने में निमग्न रहते हैं और इसी स्थिर चेतना से उन्हें मोक्ष प्राप्त हो सका। अन्य लोग जो रजो तथा तमो गुणों की मिश्रित स्थिति में रहते हैं पद तथा प्रतिष्ठा की इच्छा से भगवान् की संगति करते हैं। महाराज बलि अपने को इसी कोटि का मानते हैं। फिर भी भगवान् विष्णु ने सुतल लोक के भूमिगत क्षेत्र में बलि का द्वारपाल बन कर उन पर कृपा की जिस तरह असुरों को मार कर और गन्धर्वों को अपने यश का गुणगान करने में लगाकर उन्हें मोक्ष प्रदान किया। दूसरी ओर, भगवान् उन देवताओं की इन्द्रिय-तृप्ति कराते हैं, जो सतोगुणी होने पर गर्वित हैं और इस तरह वे मोहग्रस्त होकर भगवान् को भूल जाते हैं।

इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ।

न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

इदम्—यह; इत्थम्—इस तरह के लक्षणों से युक्त; इति—ऐसी बातों से; प्रायः—अधिकांशतः; तव—तुम्हारा; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईश्वर—हे परम स्वामी; न विदन्ति—नहीं जानते; अपि—भी; योग-ईशाः—योग के स्वामी; योग-मायाम्—मोहने की अपनी आध्यात्मिक शक्ति को; कुतः—तो क्या; वयम्—हम ।

हे पूर्णयोगियों के स्वामी, हम अपने बारे में क्या कहें, बड़े से बड़े योगी भी यह नहीं जानते कि आपकी योगमाया क्या है, अथवा वह कैसे कार्य करती है ?

तात्पर्य : किसी भी वस्तु की क्रमबद्ध जानकारी में उसके स्वरूप तथा उसके विशेष (लक्षण) निहित होते हैं, जिससे अन्य वस्तुओं से उसे पृथक् किया जा सके। माया जो सभी भौतिक सृष्टि की मूल शक्ति है, सामान्य घटनाओं से अधिक सूक्ष्म है, अतएव केवल ईश्वर तथा उनके मुक्त भक्त ही उसके स्वरूप तथा लक्षण को जान सकते हैं ।

तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्-

पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् ।

निष्क्रम्य विश्वशरणाद्भ्रूयुपलब्धवृत्तिः

शान्तो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तत्—इस तरह से; नः—हम पर; प्रसीद—कृपालु होयें; निरपेक्ष—किसी भौतिक इच्छा से रहित हैं, जो; विमृग्य—खोजे जाकर; युष्मत्—तुम्हारे; पाद—चरण; अरविन्द—कमल; धिषण—आश्रय; अन्य—अन्य; गृह—घर से; अन्ध—अन्धे; कूपात्—कुएँ से; निष्क्रम्य—निकल कर; विश्व—सारे जगत के; शरण—उनके, जो कि सहायक हैं (वृक्ष); अद्भि—पाँवों पर; उपलब्ध—प्राप्त; वृत्तिः—जिसकी जीविका; शान्तः—शान्त; यथा—जिस तरह; एकः—अकेला; उत—अथवा अन्य कुछ; सर्व—सभी का; सखैः—मित्रों के साथ; चरामि—विचरण कर सकता हूँ ।

कृपया मुझ पर दया करें, जिससे मैं गृहस्थ जीवन के अंध कूप से—अपने मिथ्या घर से—बाहर निकल सकूँ और आपके चरणकमलों की सच्ची शरण ग्रहण कर सकूँ, जिसकी खोज निष्काम सदैव साधु करते रहते हैं। तब मैं या तो अकेले या सबों के मित्र स्वरूप महान् सन्तों के साथ मुक्तरूप से विचरण कर सकूँ और विश्व-भर को दान देने वाले वृक्षों के नीचे जीवन की आवश्यकताएँ पूरी कर सकूँ ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि बलि की स्तुति के बदले श्रीकृष्ण ने उनसे वर माँगने को कहा और इस श्लोक में बलि अपना अनुरोध प्रकट कर रहे हैं। बलि भौतिक जीवन के पाश से मुक्त किये जाने के लिए याचना करते हैं, जिससे वे घर छोड़ कर एकान्त में विचरण कर सकें और

भगवान् के चरणकमल ही उनके एकमात्र आश्रय हों। बलि प्रस्ताव करते हैं कि अपने जीवनयापन के लिए वे जंगल के वृक्षों की सहायता लेंगे, जिनके नीचे पत्तों पर आवश्यकता पड़ने पर सोया जा सकता और जिनके फलों को खाया जा सकता है। और यदि भगवान् उन पर विशेष कृपालु हों तो बलि यह आशा करते हैं कि उन्हें अकेले न घूमना पड़े, अपितु भगवान् कृष्ण के भक्तों के साथ विचरण करने दिया जाय।

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो ।
पुमान्यच्छ्रद्धयातिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

शाधि—कृपया आदेश दें; अस्मान्—हमको; ईशितव्य—हम अधीनों के; ईश—हे नियन्ता; निष्पापान्—पापरहित; कुरु—करें; नः—हमको; प्रभो—हे प्रभु; पुमान्—व्यक्ति; यत्—जो; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; आतिष्ठन्—सम्पन्न करते हुए; चोदनायाः—शास्त्रीय विधियों के; विमुच्यते—मुक्त हो जाता है।

हे समस्त अधीन प्राणियों के स्वामी, कृपा करके हमें बतायें कि हम क्या करें और इस तरह हमें सारे पापों से मुक्त कर दें। हे प्रभु, जो व्यक्ति आपके आदेश का श्रद्धापूर्वक पालन करता है, उसे सामान्य वैदिक अनुष्ठानों का पालन करना अनिवार्य नहीं है।

तात्पर्य : आचार्यों ने बलि के विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है : यह सोच कर कि उसकी तुरन्त उद्धार की प्रार्थना संभवतः अत्यधिक वाचाल मानी जाय, बलि महाराज विचार करते हैं कि सर्वप्रथम उन्हें पर्याप्त शुद्ध होना पड़ेगा। जो भी हो, भगवान् कृष्ण तथा बलराम अवश्य ही किसी विशेष उद्देश्य से उनके पास आये होंगे, अतः यदि वे उनका आदेश पाकर उसका पालन करें, तो शुद्धि के लिए यह अनुपम अवसर होगा। निस्सन्देह जैसाकि बलि कहते हैं, भगवान् के आदेश के अनुसार कार्य करने वाले भक्त को शास्त्रों के आदेशों तथा वेदों के निषेधों को पालन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

श्रीभगवानुवाच

आसन्मरीचेः षट्पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे ।
देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतं यभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; आसन्—थे; मरीचेः—मरीचि के; षट्—छः; पुत्राः—पुत्र; ऊर्णायाम्—ऊर्णा (मरीचि की पत्नी) से; प्रथमे—प्रथम; अन्तरे—मनु के राज्य में; देवाः—देवतागण; कम्—ब्रह्मा पर; जहसुः—हँस दिया; वीक्ष्य—देखकर; सुताम्—अपनी पुत्री (सरस्वती) के साथ; यभितुम्—संभोग करने के लिए; उद्यतम्—उद्यत ।

भगवान् ने कहा : प्रथम मनु के युग में मरीचि ऋषि की पत्नी ऊर्णा से छः पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी उच्च देवता थे, किन्तु एक बार, जब उन्होंने ब्रह्मा को अपनी ही पुत्री के साथ संभोग करने के लिए उद्यत देखा, तो उन्हें हँसी आ गई।

तेनासुरीमगन्योनिमधुनावद्यकर्मणा ।

हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥

देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिसिताः ।

सा तान्शोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तेन—उससे; आसुरीम्—असुरों की; अगन्—प्रविष्ट हुए; योनिम्—गर्भ में; अधुना—तुरन्त; अवद्य—अनुचित; कर्मणा—कर्म द्वारा; हिरण्यकशिपोः—हिरण्यकशिपु के यहाँ; जाताः—उत्पन्न; नीताः—लाया गया; ते—वे; योग-मायया—भगवान् की दैवी मोहिनी शक्ति द्वारा; देवक्याः—देवकी के; उदरे—गर्भ से; जाताः—उत्पन्न; राजन्—हे राजा (बलि); कंस—कंस द्वारा; विहिसिताः—हत्या की गई; सा—वह; तान्—उन; शोचति—शोक करती है; आत्म-जान्—पुत्रों के लिए; स्वान्—अपने; ते—वे; इमे—वे ही; अध्यासते—जीवित हैं; अन्तिके—पास ही।

उस अनुचित कार्य के लिए, वे तुरन्त आसुरी योनि में प्रविष्ट हुए और इस तरह उन्होंने हिरण्यकशिपु के पुत्रों के रूप में जन्म लिया। देवी योगमाया ने इन सबों को हिरण्यकशिपु से छीन लिया और वे पुनः देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए। इसके बाद हे राजा, कंस ने उन सबका वध कर दिया। देवकी आज भी उन अपने पुत्रों का स्मरण कर-करके शोक करती हैं। मरीचि के वे ही पुत्र अब आपके साथ यहाँ रह रहे हैं।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती दोनों ही आचार्य बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण की योगमाया ने हिरण्यकशिपु से मरीचि के छहों पुत्रों को लेकर एक बार उन्हें फिर से महान् दैत्य कालनेमि के पुत्रों के रूप में जन्म दिलाया और अन्त में उन्हें देवकी के गर्भ में स्थानान्तरित किया।

इत एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ।

ततः शापाद्विनिर्मक्ता लोकं यास्यन्ति विञ्चराः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

इतः—यहाँ से; एतान्—उन्हें; प्रणेष्यामः—हम ले जाना चाहते हैं; मातृ—उनकी माता का; शोक—शोक; अपनुत्तये—दूर करने के लिए; ततः—तब; शापात्—अपने शाप से; विनिर्मक्ताः—मुक्त; लोकम्—अपने (देवताओं के) लोक; यास्यन्ति—जायेंगे; विञ्चराः—ञ्चर से मुक्त।

हम उन्हें इनकी माता का शोक दूर करने के लिए इस स्थान से ले जाना चाहते हैं। तब अपने शाप से विमुक्त होकर तथा समस्त कष्टों से छूट कर, वे स्वर्ग में अपने घर लौट जायेंगे।

तात्पर्य : इस स्कंध के अध्याय दो के श्लोक ५ तथा ८ के तात्पर्यों में श्रील प्रभुपाद ने इंगित किया है कि मरीचि के पुत्रों को ब्रह्मा के प्रति किये गये अपराध के कारण अपमानित किया गया। यही नहीं, हिरण्यकशिपु ने एक बार श्राप दिया था कि भावी जीवन में उन्हें अपने पिता के द्वारा मारा जायेगा। इस शाप की पूर्ति तब हुई जब वसुदेव ने एक-एक करके अपने पुत्रों का वध कंस द्वारा होने दिया।

स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृद्घृणी ।

षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

स्मर-उद्गीथः परिष्वङ्गः—स्मर, उद्गीथ तथा परिष्वंग; पतङ्गः क्षुद्रभृत् घृणी—पतंग, क्षुद्रभृत तथा घृणी; षट्—छः; इमे—ये; मत्—मेरी; प्रसादेन—कृपा से; पुनः—फिर से; यास्यन्ति—जायेंगे; सत्—अच्छे पुरुषों के; गतिम्—गन्तव्य को।

मेरी कृपा से स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृत तथा घृणी—ये छहों शुद्ध सन्तों के धाम वापस जायेंगे।

तात्पर्य : ये उन छह बालकों के नाम हैं जब वे मरीचि के पुत्र रूप में थे। इनमें सबसे बड़ा स्मर जब पुनः वसुदेव के यहाँ उत्पन्न हुआ तो कीर्तिमान कहलाया जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१०.१.५७) में अंकित है—

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।

अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥

“वसुदेव भयभीत थे कि वचन-भंग होने से वे झूठे बन जायेंगे। इसलिए बहुत ही पीड़ा के साथ उन्होंने अपने प्रथमजात पुत्र कीर्तिमान को कंस के हाथों में सौंप दिया।”

इत्युक्त्वा तान्समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ ।

पुनर्द्वारिवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; तान्—उनको; समादाय—लेकर; इन्द्रसेनेन—बलि महाराज द्वारा; पूजितौ—दोनों सम्मानित हुए; पुनः—फिर से; द्वारवतीम्—द्वारका तक; एत्य—जाकर; मातुः—अपनी माता के; पुत्रान्—पुत्रों को; अयच्छताम्—सौंप दिया।

[शुक्रदेव गोस्वामी ने कहा] : यह कहकर भगवान् कृष्ण तथा बलराम बलि महाराज द्वारा भलीभाँति पूजित होकर छहों पुत्रों को लेकर द्वारका लौट आये, जहाँ पर उन्हें उनकी माता को सौंप दिया।

तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्रस्नेहस्तुतस्तनी ।

परिष्वज्याङ्गमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्षणशः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

तान्—उन; दृष्ट्वा—देखकर; बालकान्—बालकों को; देवी—देवी (देवकी); पुत्र—अपने पुत्रों के लिए; स्नेह—स्नेह के कारण; स्तुत—बहते हुए; स्तनी—स्तनों वाली; परिष्वज्य—आलिंगन करके; अङ्गम्—अपनी गोद में; आरोप्य—रख कर; मूर्ध्न—उनके सिरों को; अजिघ्रत्—सूँघा; अभीक्षणशः—बारम्बार।

जब देवी देवकी ने अपने खोये हुए बालकों को देखा, तो उनके प्रति उन्हें इतना स्नेह उमड़ा कि उनके स्तनों से दूध बह चला। उन्होंने उनका आलिंगन किया और अपनी गोद में बैठाकर बारम्बार उनका सिर सूँघा।

अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिस्तुतम् ।

मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

अपाययत्—पीने दिया; स्तनम्—स्तनों को; प्रीता—प्रेमपूर्वक; सुत—अपने पुत्रों का; स्पर्श—स्पर्श करने से; परिस्तुतम्—सराबोर (भीगी हुई); मोहिता—मोहग्रस्त; मायया—माया द्वारा; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; यया—जिसके द्वारा; सृष्टिः—सृष्टि; प्रवर्तते—उत्पन्न हुई।

उन्होंने अपने पुत्रों को बड़े ही प्रेम से स्तन-पान करने दिया और उनके स्पर्श से उनके स्तन दूध से भीग गये। वे उसी विष्णु-माया से मोहित हो गईं, जो इस ब्रह्माण्ड का सृजन करती हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के मतानुसार यहाँ पर आये सृष्टि शब्द से वह सृजन विधि भी सूचित होती है, जिससे विष्णु की योगमाया उनकी लीलाओं की पृष्ठभूमि तैयार करती है। माया के भौतिक पक्ष द्वारा माता देवकी के प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

पीत्वामृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ।

नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥

ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् ।
मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवोकसाम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

पीत्वा—पीकर; अमृतम्—अमृत तुल्य; पयः—दूध; तस्याः—उनका; पीत—पिया हुआ; शेषम्—बचा हुआ; गदा-भृतः—गदा चलाने वाले कृष्ण का; नारायण—नारायण (कृष्ण) के; अङ्ग—शरीर के; संस्पर्श—स्पर्श से; प्रतिलब्ध—फिर से पा लिया; आत्म—(देवताओं के रूप में) अपने मूल स्वरूपों के; दर्शनाः—अनुभूति; ते—वे; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; देवकीम्—देवकी को; पितरम्—अपने पिता को; बलम्—तथा बलराम को; मिषताम्—देखते-देखते; सर्व—समस्त; भूतानाम्—लोगों के; ययुः—चले गये; धाम—स्थान; दिव-ओकसाम्—देवताओं के ।

कृष्ण ने इससे पूर्व पीकर जो कुछ बाकी छोड़ा था, उस अमृत तुल्य दूध को पीकर छहों पुत्रों ने नारायण के दिव्य शरीर का स्पर्श किया और इस स्पर्श से उनकी मूल पहचान उनमें जाग गई। उन्होंने गोविन्द, देवकी, अपने पिता तथा बलराम को नमस्कार किया और फिर हर एक के देखते-देखते, वे देवताओं के धाम के लिए रवाना हो गये।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण देवकी तथा वसुदेव के पास शिशु के रूप में अत्यल्प समय तक ही रहे। पहले तो भगवान् उनके समक्ष चतुर्भुजी रूप में प्रकट हुए और उनकी स्तुतियाँ सुनने के बाद उनको आनन्दित करने के लिए सामान्य शिशु में परिणत हो गये। किन्तु कृष्ण को अपने भाइयों की तरह दुर्भाग्य-पूर्ण दुख उठाने से बचाने के लिए वसुदेव तुरन्त ही उन्हें कंस के कारागार से बाहर ले गये। वसुदेव द्वारा ले जाने के तुरन्त पूर्व माता देवकी ने कृष्ण को एक बार स्तन-पान कराया जिससे वे नन्द-व्रज की लम्बी यात्रा के दौरान प्यासे न हों। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका में यह लिखा हुआ है।

तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ।
मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

तम्—यह; दृष्ट्वा—देखकर; देवकी—देवकी; देवी—देवी; मृत—मरे हुए (पुत्रों) के; आगमन—वापस आना; निर्गमम्—तथा विदाई; मेने—उसने सोचा; सु—अत्यधिक; विस्मिता—चकित; मायाम्—जादू को; कृष्णस्य—कृष्ण के; रचिताम्—उत्पन्न; नृप—हे राजा परीक्षित ।

हे राजन्, अपने पुत्रों को मृत्यु से वापस आते और फिर विदा होते देखकर सन्त स्वभाव वाली देवकी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह कृष्ण द्वारा उत्पन्न माया मात्र थी।

एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानि भारत ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधानि—इस तरह; अद्भुतानि—अद्भुत; कृष्णस्य—कृष्ण की; परम-आत्मनः—परमात्मा; वीर्याणि—लीलाएँ;
अनन्त—असीम; वीर्यस्य—जिसका पराक्रम; सन्ति—हैं; अनन्तानि—अपार; भारत—हे भरतवंशी ।

हे भारत, असीम पराक्रम वाले प्रभु, परमात्मा श्रीकृष्ण ने इस तरह की आश्चर्यजनक
असंख्य लीलाएँ सम्पन्न कीं ।

श्रीसूत उवाच

य इदमनुश्रुणोति श्रावयेद्वा मुरारे-
श्रितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ।
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं
भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत ने (उन मुनियों से, जो नैमिषारण्य में एकत्र हुए, उनसे) कहा; यः—जो भी; इदम्—इसे;
अनुश्रुणोति—ठीक से सुनता है; श्रावयेत्—अन्यों को सुनाता है; वा—अथवा; मुरारेः—मुर नामक असुर को मारने वाले, कृष्ण
की; चरितम्—लीला को; अमृत—अमर; कीर्तेः—जिसकी कीर्ति; वर्णितम्—वर्णित; व्यास-पुत्रैः—व्यासदेव के पुत्र द्वारा;
जगत्—ब्रह्माण्ड के; अघ—पापों को; भित्—जो (लीला) विनष्ट करती है; अलम्—पूरी तरह; तत्—उसके; भक्त—भक्तों के
लिए; सत्—दिव्य; कर्ण-पूरम्—कान का आभूषण; भगवति—भगवान् में; कृत—स्थित करते हुए; चित्तः—अपना मन;
याति—वह जाता है; तत्—उसके; क्षेम—शुभ; धाम—निजी आवास ।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : नित्य कीर्ति वाले भगवान् मुरारी द्वारा की गई यह लीला
ब्रह्माण्ड के सारे पापों को पूरी तरह नष्ट करती है और भक्तों के कानों के लिए दिव्य आभूषण
जैसा काम करती है । जो भी व्यासदेव के पूज्य पुत्र द्वारा सुनाई गई इस कथा को ध्यानपूर्वक
सुनता या सुनाता है, वह भगवान् के ध्यान में अपने मन को स्थिर कर सकेगा और ईश्वर के
सर्वमंगलमय धाम को प्राप्त करेगा ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार भगवान् कृष्ण के जीवन की अद्भुत घटनाओं का श्रवण
करना पापों का नाश इस विधि से करता है, जो पूर्ण (अलम्) है, क्योंकि यह आसान है । कोई भी
इस श्रवण में भाग ले सकता है और जो लोग कृष्ण के भक्त बन जाते हैं, वे उनसे सम्बद्ध कथाओं
रूपी आभूषणों को अपने कानों में धारण करने का आनंद लेते हैं । इन घटनाओं के अवसर पर जो लोग
उपस्थित थे, न केवल वे ही अपितु शुकदेव गोस्वामी, सूत गोस्वामी समेत सभी लोग, जिन्होंने सुना है
या आगे जो भी सुनेंगे, वे कृष्ण की दिव्य कीर्ति के सतत वाचन द्वारा आशीष के भागी होंगे ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “कृष्ण द्वारा वसुदेव को उपदेश दिया जाना तथा देवकी-पुत्रों की वापसी” नामक पिचासिवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।